श्रीमती ज्ञान कौर एवं आदि आदि

बनाम

पंजाब राज्य एवं अन्य

21 मार्च, 1996

[जे.एस वर्मा, जी.एन रे, एन.पी सिंह, फैजानउद्दीन, जी.टी नानावती, न्यायमूर्तिगण]

भारत का संविधान, 1950:

अनुच्छेद 21 का निर्वचन – जीवन का अधिकार – विषयक्षेत्र – अभिनिर्धारित किया गया कि इसमें मरने का अधिकार शामिल नहीं है – कोई भी पहलू जो जीवन को गरिमापूर्ण बनाता है वह जीवन के अधिकार में शामिल है, लेकिन वह नहीं जो इसे समाप्त करता है – अनुच्छेद 19 में अन्य स्वतंत्रताओं में शामिल नकारात्मक पहलुओं को अनुच्छेद 21 के संबंध में अनुपयुक्त अभिनिर्धारित किया गया है।

भारतीय दंड संहिता, 1860:

धारा 309 –आत्महत्या– प्रयत्न– सजा के प्रावधान को अनुच्छेद 14 और 21 का उल्लंघन अभिनिर्धारित नहीं किया गया है।

धारा 306 –आत्महत्या के लिए दुष्प्रेरण –सज़ा का प्रावधान असंवैधानिक नहीं, अभिनिर्धारित किया गया–आत्महत्या के लिए दुष्प्रेरण और आत्महत्या का प्रयत्न करना– दो अलग–अलग अपराध अभिनिर्धारित किये गए – धारा 306 को धारा 309 से स्वतंत्र अभिनिर्धारित किया गया है।

अपीलकर्ता और उसके पति को आत्महत्या के लिए दुष्प्रेरण के भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 306 के अंतर्गत विचारण न्यायालय द्वारा दोषी ठहराया गया था। उच्च न्यायालय ने उनकी सजा को बरकरार रखा था। इस न्यायालय में अपील में यह तर्क दिया गया कि 'मरने के अधिकार' को संविधान के अनुच्छेद 21 में शामिल किया गया है जैसा कि पी. रथिनाम बनाम भारत संघ और अन्य, [1994] 3 एससीसी 394 में धारा 309 भा.द. स. को असंवैधानिक घोषित किया गया था। कोई भी व्यक्ति जो किसी अन्य को आत्महत्या के लिए दुष्प्रेरित कर रहा है, वह केवल अनुच्छेद 21 के अंतर्गत मौलिक अधिकार के प्रवर्तन में सहायता कर रहा है; और, इसलिए, सहायता प्राप्त आत्महत्या को दंडित करने वाली भा.द. स. की धारा 306 समान रूप से अनुच्छेद 21 का उल्लंघन है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि यह तर्क पी. रथिनाम के निर्णय पर आधारित था, न्यायालय ने उस निर्णय पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता महसूस की।

तदनुसार, मामले को संबंधित अपीलों के साथ एक संविधान पीठ को संदर्भित किया गया था।

इन प्रश्नों पर कि (1) क्या धारा 306 309 भारतीय दंड संहिता, 1860 संवैधानिक रूप से वैध है और (ii) क्या संविधान के अनुच्छेद 21 में निहित 'जीवन के अधिकार' में 'मरने का अधिकार' शामिल है:

इस न्यायालय ने अपीलों का निस्तारण करते हुए,

अभिनिर्धारित किया : 1. भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 309 संविधान के अनुच्छेद 21 का उल्लंघन नहीं है। [720–बी–सी]

2. अनुच्छेद 21 जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता की सुरक्षा को संरक्षण देने वाला एक प्रावधान है और किसी भी कल्पना के विस्तार से 'जीवन के खत्म होने' को 'जीवन की सुरक्षा' में शामिल नहीं किया जा सकता है, चाहे किसी व्यक्ति को आत्महत्या करके अपना जीवन समाप्त कर लेने की अनुमति देने के पीछे दर्शन कुछ भी हो, 'मरने के अधिकार' को अनुच्छेद 21 में दिए गए संरक्षित मौलिक अधिकार के एक भाग के रूप में पढ़ना कठिन है। 'जीवन का अधिकार' अनुच्छेद 21 में सन्निहित एक प्राकृतिक अधिकार है, लेकिन आत्महत्या जीवन की अप्राकृतिक समाप्ति है और इसलिए, 'जीवन के अधिकार' की अवधारणा के साथ असंगत और परस्पर विरोधी है। जब कोई व्यक्ति आत्महत्या करता है तो उसे कुछ प्रत्यक्ष सकारात्मक कृत्य करने पड़ते हैं और उन कृत्यों की उत्पत्ति का पता नहीं लगाया जा सकता है, या उन्हें अनुच्छेद 21 के अंतर्गत 'जीवन के अधिकार' के संरक्षण में शामिल नहीं किया जा सकता है। जीवन की पवित्रता के महत्वपूर्ण पहलू को नजरअंदाज नहीं किया जाना चाहिए। [711–ई–एफ]

3. अन्य अधिकारों की प्रकृति में कोई समानता नहीं है, जैसे 'अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता' का अधिकार आदि, एक तुलनीय आधार प्रदान करने के लिए यह मानने के लिए कि जीवन के अधिकार' में 'मरने का अधिकार' भी शामिल है। यह तुलना अनुचित है। पी. रथिनाम के मामले में किये गये अनुच्छेद 21 के निर्वचन से सहमत नहीं हुआ जा सकता। पी. रथिनाम के मामले में धारा 309 को अनुच्छेद 21 का उल्लंघन धारित किए जाने का एकमात्र कारण है इसकी विधिक संवीक्षा का ना होना। [711–जी; 712–एच]

4. अनुच्छेद 21 में 'जीवन' शब्द के अर्थ और अंतर्वस्तु के लिए इसे मानवीय गरिमा के साथ जीवन माना गया है। जीवन का कोई भी पहलू जो इसे गरिमामय बनाता है, उसे इसमें पढ़ा जा सकता है, लेकिन वह नहीं जो इसे ख़त्म कर देता है और इसलिए, यह जीवन के निरंतर अस्तित्व के साथ असंगत है, जिसके परिणामस्वरूप अधिकार ही ख़त्म हो जाता है। 'मरने का अधिकार', यदि कोई है, स्वाभाविक रूप से 'मरने के अधिकार' के साथ असंगत है जैसे कि 'मृत्यु' के साथ 'जीवन' । [712–ए–बी]

5. इस दृष्टि से इच्छामृत्यु का विरोध कि क्षीण अवस्था (पीवीएस) का निरंतर बने रहना, असाक्ष्य बीमारी के रोगी के लिए लाभकारी नहीं है यह 'जीवन की पवित्रता' या 'गरिमा के साथ जीने के अधिकार' के सिद्धांत को निर्धारित करने के लिए कि क्या 'जीवन के अधिकार' के संरक्षण में 'मरने का

अधिकार' भी शामिल है, यह अनुच्छेद 21 के दायरे को निर्धारित करने में कोई सहायता नहीं करता। 'जीवन के अधिकार' में मानवीय गरिमा के साथ जीने का अधिकार शामिल होने का अर्थ में, इसका अस्तित्व प्राकृतिक जीवन के अंत तक होना भी शामिल है। इसमें मृत्यु तक गरिमापूर्ण जीवन का अधिकार भी शामिल है, जिसमें मृत्यु की गरिमापूर्ण प्रक्रिया भी शामिल है। दूसरे शब्दों में, इसमें एक मरते हुए व्यक्ति को भी गरिमा के साथ मरने का अधिकार शामिल हो सकता है जब उसका जीवन समाप्त हो रहा हो। लेकिन जीवन के अंत में गरिमा के साथ 'मरने के अधिकार' को जीवन की प्राकृतिक अवधि को कम करने वाली अप्राकृतिक मृत्यु से 'मरने के अधिकार' के साथ भ्रमित या समतुल्य नहीं माना जा सकता है। [712–सी–डीजे]

6. एक मरते हुए आदमी के संदर्भ में, जो असाध्य रूप से बीमार है या लगातार क्षीण अवस्था में है, एक प्रश्न उठ सकता है कि उसे उन परिस्थितियों में अपने जीवन को समय से पहले समाप्त करके इस अवस्था को समाप्त करने की अनुमति दी जा सकती है। इस श्रेणी के मामले गरिमा के साथ जीने के अधिकार के एक भाग के रूप में 'सम्मान के साथ मरने के अधिकार' के दायरे में आ सकते हैं, जब प्राकृतिक जीवन की समाप्ति के कारण मृत्यु निश्चित और आसन्न हो और प्राकृतिक मृत्यु की प्रक्रिया शुरू हो गई हो। ये जीवन को ख़त्म करने के मामले नहीं हैं, बल्कि प्राकृतिक मृत्यु की प्रक्रिया को तेज़ करने के मामले हैं जो पहले ही शुरू हो चुकी है। ऐसे मामलों में भी चिकित्सक की सहायता से जीवन समाप्त करने की अनुमति देने पर बहस अनिर्णीत है। यह दोहराना पर्याप्त है कि ऐसे मामलों में प्राकृतिक मृत्यु की प्रक्रिया के दौरान पीड़ा की अवधि को कम करने के लिए जीवन की समाप्ति की अनुमति देने के दृष्टिकोण का समर्थन करने वाला तर्क, अनुच्छेद 21 के अधिकार के निर्वचन में जीवन की प्राकृतिक अवधि को कम करने के लिए उपलब्ध नहीं है। [712–ई–जी]

पी. रथिनाम बनाम. भारत संघ और अन्य, [1994] 3 एससीसी 394 और मारुति श्रीपति दुबल बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1987) सीआरएल एल.जे. 743, खारिज किया गया।

राज्य बनाम संजय कुमार भाटिया, (1985) सीआरएल एल.जे. 931; माउंट बरकत बनाम सम्राट, ए आई आर (1934) लाहौर 514; सम्राट बनाम द्वारका पूजा, 14 बोम्बे एल.आर. 146; सम्राट बनाम माउंट धिराजिया, ए आई आर (1940) ऑल 486; राम सुंदर बनाम उत्तर प्रदेश सरकार, ए आई आर (1962) ऑल 262; वैलेंटिनो बनाम राज्य, एआईआर (1967) गोवा 138; फूलभाई बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1976) सीआरएल। एल.जे. 1519; राधारानी बनाम मध्य प्रदेश राज्य, ए आई आर (1981) एससी 1776 और रुक्मिना देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (1988) सीआरएल एल.जे. 548, संदर्भित।

अपराध और न्याय का विश्वकोश, संस्करण चतुर्थ पृष्ठ 1521, (1983) संस्करण संदर्भित।

चेन्ना जगदीश्वर और बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, (1988) सीआरएल एल. जे. 549, स्वीकृत।

एफ मैक्स मुलर संस्करण मनु के नियम, जॉर्ज बुहलर द्वारा अनुवादित, (1967 पुनर्मुद्रण) खंड। 25, पृष्ठ 204; एच. रोमिली फेडेन, सुसाइड (लंदन, 1938) 42; "मरने का अधिकार: कानून और

चिकित्सा और मनोचिकित्सा के लिए नई समस्याएं", 37 एमोरी कानून जौमल 627 (1988) संदर्भित।

7. यह नहीं कहा जा सकता कि भारतीय दंड संहिता की धारा 309 अनुच्छेद 14 का उल्लंघन है। अनुच्छेद 14 के आधार पर चुनौती का समर्थन करने के लिए अनुच्छेद 21 को प्रयोजन में नही लाया जा सकता । [715–जी]

8. आत्महत्या के प्रयत्न को दंडित करने वाले दंडात्मक प्रावधान को बनाए रखने की वांछनीयता पर बहस, जिसमें विधि आयोग द्वारा इसे हटाने की सिफारिश भी शामिल है, यह इंगित करने के लिए पर्याप्त नहीं है कि यह प्रावधान अनुच्छेद 14 का उल्लंघन होने के कारण यह असंवैधानिक है। विचार करने के लिए भले ही तथ्य यह हों कि, प्रावधान की गंभीरता को सजा के मामले में व्यापक विवेकाधिकार से कम किया जाता है क्योंकि न्यूनतम सजा देने की कोई आवश्यकता नहीं है और कारावास की सजा अनिवार्य भी नहीं है। भा.द. स. की धारा 309 के अंतर्गत दोषी पाए जाने पर सजा के रूप में कोई न्यूनतम जुर्माना भी निर्धारित नहीं है, जो अकेले सजा के रुप में दी जा सकती है। पी. रथिनाम के मामले में इस पहलू पर यह धारित करने के लिए ध्यान दिया गया है कि अनुच्छेद 14 का उल्लंघन नहीं हुआ। [715–बी–सी]
पी. रथिनाम बनाम भारत संघ अन्य, [1994] 3 एससीसी 394, पुष्टि की गई। (इस हद तक यह माना जाता है कि भा.द. स. की धारा 309, अनुच्छेद 14 का उल्लंघन नहीं है)।

9. संविधि में धारा 309 को बनाए रखने की वांछनीयता, उस प्रावधान की संवैधानिक वैधता के संदर्भ में गैर–अनुपालन जिसका भारतीय संविधान में कुछ प्रावधान के संदर्भ में परीक्षण किए जाने से एक अलग मामला है । इस उद्देश्य के लिए यह मानते हुए कि उन कारणों से भारतीय दंड संहिता से धारा 309 को हटाना वांछनीय हो सकता है, जिसके कारण विधि आयोग की सिफारिश हुई और ऐसे प्रावधान की निरंतरता का विरोध करने वाले व्यक्तियों द्वारा उस विचार को अपनाया गया। यह नहीं कहा जा सकता है कि धारा 309 को असंवैधानिक घोषित करने का यह अपने आप में एक कारण है, जब तक कि इसे संविधान के किसी विशिष्ट प्रावधान का उल्लंघन न धारित किया जाए। [708–डी–ई]

10. भा.द. स. की धारा 309 की संवैधानिक वैधता की चुनौती को खारिज कर दिया गया है, धारा 306 की संवैधानिक वैधता के विरुद्ध अब कोई गंभीर चुनौती नहीं है। धारा 306 एक अलग अपराध बनाती है जो भा.द. स. की धारा 309 से स्वतंत्र अस्तित्व में है। धारा 306 'आत्महत्या के लिए दुष्प्रेरण' के लिए सज़ा निर्धारित करती है जबकि धारा 309 'आत्महत्या के लिए प्रयत्न' के लिए सज़ा निर्धारित करती है। आत्महत्या के प्रयत्न के लिए दुष्प्रेरण धारा 306 के दायरे से बाहर है और यह केवल भा.द. स. की धारा 309 सहित धारा 107 के अंतर्गत दंडनीय है। यहां तक कि जहां आत्महत्या के प्रयत्न के लिए सजा को वांछनीय नहीं माना जाता है, वहां इसके दुष्प्रेरण को दंडनीय अपराध बना दिया गया है। दूसरे शब्दों में सहायता प्राप्त आत्महत्या और सहायता प्राप्त आत्महत्या के प्रयत्न को समाज के हित में ठोस कारणों से दंडनीय बनाया गया है। ऐसे दंड प्रावधान की अनुपस्थिति में निहित खतरे को रोकने के लिए भी ऐसा प्रावधान वांछनीय माना जाता है। दुष्प्रेरक

को अलग तरह से देखा जाता है, क्योंकि वह किसी अन्य व्यक्ति के जीवन को खत्म करने के लिए दुष प्रेषरण करता है, और ऐसे दंडात्मक प्रावधान की अनुपस्थिति के दुरुपयोग को रोकने के लिए दुष्प्रेरण की सजा को आवश्यक माना जाता है। [716–बी–सी; जी–एच; 717–ए; सी)

11. चिकित्सक सहायता प्राप्त आत्महत्या की श्रेणी से बाहर सहायता प्राप्त आत्महत्या के लिए जीवन की पवित्रता के मूल सिद्धांत से बाहर होने का कोई तर्कसंगत आधार नहीं है। आत्महत्या के प्रयत्न को दंडित करने वाले प्रावधान को चुनौती देने के लिए दिए गए कारण, आत्महत्या के लिए दुष्प्रेरक या आत्महत्या का प्रयत्न करने वाले को उपलब्ध नहीं हैं। आत्महत्या के लिए दुष्प्रेरण या आत्महत्या का प्रयत्न करना एक अलग अपराध है जो उन देशों के कानून में भी लागू पाया जाता है जहां आत्महत्या का प्रयत्न दंडनीय नहीं है। भा.द. स. की धारा 306 एक अलग अपराध बनाती है जो भा.द. स. की धारा 309 से स्वतंत्र है। भा.द. स. की धारा 306 असंवैधानिक नहीं है. [719–ई–जी]

नरेश मारोतराव सखारे और अन्य. बनाम भारत संघ अन्य, (1995) सीआरएल एल.जे. 96, स्वीकृत।

रोड्रिग्ज बनाम बी.सी. (ए.–जी.), 107 डी.एल.आर. (चौथी शृंखला) 342; कंपेशन इन डाइंग बनाम वाशिंगटन राज्य, 49 एफ. 3 डी 586 और एरेडेल एन.एच.ए. ट्रस्ट बनाम ब्लैंड, (1993) 2 डब्लूएलआर 316 (एच.एल.), संदर्भित।

आर. बनाम कार्डिफ़ कोरोनर, एकस पी. थॉमस, [1970] 3 ऑल ईआर 469 (1970) 1 डब्लूएलआर 1475 और रेग बनाम कॉक्स 18 सितंबर, 1992 (असूचित), उद्धृत।

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकार: आपराधिक अपील संख्या 274/1984 आदि

1982 के सी आर एल ए संख्या 629–एसबी में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के निर्णय और आदेश दिनांक 20.2.84 से

के.टी.एस. तुलसी, बी.एस. मलिक, के.एन. शुक्ला, एम.के. बनर्जी, सोली जे. सोराबजी और एफ.एस. नरीमन, (संजय बंसल) जी.के. बंसल ए.एस. सोहल, एम.सी. ढींगरा, ए.के. सांघी के.के. गोगना, एच.एम. सिंह, एस.के. गंभीर, विवेक गम्बिर, डॉ. मीरा अग्रवाल, आर.सी. मिश्रा, इओरेल अली, एच.एस. पूल्का, दीपक भट्टाचार्य, रथन दास (सुशील बजाज), आरएस सूरी, एस एम जाधव, डी एम नारगोल्कर, बी एस बंथिया, उमा नाथ सिंह और पी परमेश्वर पक्षकार के लिए उपस्थित।

निर्णय न्यायमूर्ति जे एस वर्मा, द्वारा दिया गया ।

विशेष अनुमति याचिकाओं को अनुमति प्रदान की गई।

अपीलकर्ताओं ज्ञान कौर और उनके पति हरबंस सिंह को विचारण न्यायालय ने धारा 306, भारतीय दंड संहिता , 1860 (संक्षेप में " भा.द.स. ") के अंतर्गत दोषी ठहराया था और प्रत्येक को छह साल की सश्रम कारावास और दो हजार रुपये के जुर्माने की सजा सुनाई थी या व्यतिक्रम होने की दशा के में, नौ महीने के लिए अतिरिक्त कठोर कारावास की सजा सुनाई थी। उच्च न्यायालय में अपील करने पर, दोनों की सजा बरकरार रखी गई है लेकिन अकेले ज्ञान कौर की सजा को घटाकर तीन साल के लिए कठोर कारावास कर दिया गया है। विशेष अनुमति द्वारा ये अपीलें भा.द.स. की धारा 306 के अंतर्गत उनकी दोषसिद्धि और सजा के विरुद्ध हैं ।

अन्य बातों के अलावा, अपीलकर्ताओं की दोषसिद्धि को इस बात पर चुनौती दी गई है, कि भा.द.स. की धारा 306 असंवैधानिक है। भा.द.स. की धारा 306 , की संवैधानिक वैधता को चुनौती देने के लिए दिया गया पहला तर्क इस न्यायालय के दो विद्वान न्यायाधीशों की पीठ द्वारा पी. रथिनाम बनाम भारत संघ और अन्य , 1994) एससीसी 394 के निर्णय पर आधारित है , जिसमें धारा 309 , भा.द.स. को संविधान के अनुच्छेद 21 के उल्लंघन के कारण असंवैधानिक माना गया है। यह तर्क दिया गया कि 'मरने के अधिकार' को संविधान के अनुच्छेद 21 में शामिल माना गया है जैसा कि पी. रथिनाम ने भा.द.स. की धारा 309 को असंवैधानिक घोषित करते हुए कहा गया था, कोई भी व्यक्ति किसी अन्य की आत्महत्या करने का दुष्प्रेरण कर रहा है तो वह केवल उसके मौलिक अधिकार के प्रवर्तन में सहायता कर रहा है और, इसलिए भा.द.स. की धारा 306 के अंतर्गत सहायता प्राप्त आत्महत्या को दंडित करना अनुच्छेद 21 का समान रूप से उल्लंघन है। यह आग्रह किया गया है कि यह तर्क यह घोषित करने के लिए अकेले पर्याप्त है कि भा.द.स. की धारा 306 भी संविधान के अनुच्छेद 21 का उल्लंघन करने के कारण असंवैधानिक है।

सीधे तौर पर उठाए गए मुद्दों में से एक संविधान के अनुच्छेद 21 के दायरे में 'मरने के अधिकार' को शामिल करना है, यह तर्क देना कि 'मरने के अधिकार' के प्रवर्तन में सहायता करने वाला कोई भी व्यक्ति केवल अनुच्छेद 21 के अंतर्गत मौलिक अधिकार के प्रवर्तन में सहायता कर रहा है, जो दंडात्मक नहीं हो सकता; और धारा 306 , भा.द.स. उस कार्य को दंडनीय बनाती है, इसलिए, अनुच्छेद 21 का उल्लंघन करती है । पी. रथिनाम में निर्णय के आधार पर इस तर्क को ध्यान में रखते हुए, उस निर्णय पर पुनर्विचार अपरिहार्य है।

भा.द.स. की धारा 306 की संवैधानिक वैधता से संबंधित अनुच्छेद 21 की निर्वचन के संबंध में कानून के एक महत्वपूर्ण प्रश्न से जुड़े इस विवाद के महत्व को ध्यान में रखते हुए, जिससे पी.रथिनाम में उनके निर्णय पर पुनर्विचार की आवश्यकता है, खण्ड पीठ जिसके समक्ष ये अपीलें सुनवाई के लिए आई थीं, उसने इस मामले में निर्णय लेने के लिए इसे संविधान पीठ के पास संदर्भित कर दिंया। इस तरह मामला सविधान पीठ के समक्ष आया।

नोटिस के जवाब में उपस्थित हुए भारत के विद्वान महान्यायवादी, पक्षों के विद्वान अधिवक्ता के अलावा, हमने वरिष्ठ अधिवक्ता श्री फाली एस. नरीमन और श्री सोली जे सोराबजी से भी इस मामले में न्याय मित्र के रूप में उपस्थित होने का अनुरोध किया। हमारे समक्ष उपस्थित सभी विद्वान

अधिवक्ताओं ने हमें इस जटिल और संवेदनशील मुद्दे पर निर्णय लेने में सक्षम बनाने में बहुत सहायता प्रदान की है।

अब हम कई विद्वान अधिवक्ताओं की दलीलों का उल्लेख कर सकते हैं जिन्होंने विभिन्न दृष्टिकोणों को कुशलतापूर्वक प्रस्तुत किया।

इन मामलों में श्री उजागर सिंह और श्री बीएस मलिक भा.द.स. की धारा 306 और 309 की संवैधानिक वैधता की चुनौती का समर्थन करने के लिए अपीलकर्ताओं की ओर से उपस्थित हुए । दोनों विद्वान अधिवक्ताओं ने तर्क दिया कि धारा 306 और धारा 309 असंवैधानिक हैं। दोनों ने पी. रथिनाम के निर्णय पर भरोसा किया। हालाँकि, श्री उजागर सिंह ने पी. रथिनाम में धारा 309 , भा.द.स. की संवैधानिक अमान्यता के निष्कर्ष का समर्थन केवल अनुच्छेद 14 के उल्लंघन के आधार पर किया , न कि अनुच्छेद 21 के आधार पर किया । श्री बीएस मलिक ने तर्क दिया कि धारा 309, अनुच्छेद 21 और अनुच्छेद 14 का उल्लंघन है। उन्होंने धारा 309 को अमान्य मानने के लिए पी. रथिनाम में अनुच्छेद 21 के आधार पर दृढ़ता से भरोसा किया। उन्होंने आग्रह किया कि 'मरने के अधिकार' को अनुच्छेद 21 के दायरे में शामिल होने के कारण, आत्महत्या करने में सहायता करना अपराध नहीं हो सकता है और इसलिए, धारा 306, भा.द.स. भी अनुच्छेद 21 का उल्लंघन है। उन्होंने तर्क दिया कि धारा 306 सिर्फ इसी कारण से असंवैधानिक है। संबंधित मामलों में से एक में उपस्थित श्री एस.के.गंभीर ने कोई अतिरिक्त तर्क नहीं दिया।

विद्वान महान्यायवादी ने तर्क दिया कि धारा 306 भा.द.स. एक अलग अपराध है और धारा 309, भा.द.स. से स्वतंत्र रूप से अस्तित्व में है। विद्वान महान्यायवादी ने पी. रथिनाम के निर्णय और उसमें अनुच्छेद 21 में मरने के अधिकार को शामिल करने वाले निर्वचन का समर्थन नहीं किया। श्री एफ.एस. नारीमन ने निवेदन किया कि धारा 306 और 309 स्वतंत्र मूल अपराध हैं और धारा 306 धारा 309 से स्वतंत्र रूप से अस्तित्व में हो सकती है। श्री नरीमन ने तर्क दिया कि धारा 309 को भा.द.स. से हटाने की वांछनीयता यह कहने से भिन्न है कि यह असंवैधानिक है। उन्होंने यह भी निवेदन किया कि इच्छामृत्यु पर बहस धारा 309 की संवैधानिक वैधता के प्रश्न पर निर्णय के लिए प्रासंगिक नहीं है। अनुच्छेद 21 में तथाकथित ' मरने के अधिकार' को शामिल करने की व्याख्या नहीं दी जा सकती है, क्योंकि अनुच्छेद 21 जीवन और स्वतंत्रता की सुरक्षा को संरक्षित करता है, उसकी समाप्ति को नहीं। उन्होंने कहा कि धारा 309 अनुच्छेद 14 का भी उल्लंघन नहीं करती है क्योंकि उसमें परिस्थितियों के शिकार हुए आत्महत्या के लिए प्रयत्न करने वाले किसी दुर्भाग्यपूर्ण पीड़ित के प्रति दया के साथ सजा का प्रावधान को लागू करने का पर्याप्त विवेकाधिकार है। श्री नरीमनी द्वारा रिपोर्ट किए गए निर्णयों का उल्लेख करते हुए संकेत दिया कि न्यायालयों द्वारा दया के साथ इस प्रावधान को लागू करना सुनिश्चित किया गया है जिससे यह संचालन में कठोर ना रहे। श्री नरीमन ने निवेदन किया कि पी. रथिनाम में निर्णय पर पुनर्विचार की आवश्यकता है, क्योंकि यह गलत है। श्री सोली जे सोराबजी ने निवेदन किया कि धारा 306 , भा.द.स. की धारा 309 से स्वतंत्र रूप से अस्तित्व में रह सकती है क्योंकि यह अनुच्छेद 14 या अनुच्छेद 21 का उल्लंघन नहीं करती है। श्री सोराबजी ने पी. रथिनाम में अनुच्छेद 21 में ' मरने का अधिकार' शामिल है इस व्याख्या का समर्थन नहीं किया, लेकिन उन्होंने इस निष्कर्ष का समर्थन किया कि धारा 309 इस आधार पर असंवैधानिक

है कि यह संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करती है। श्री सोराबजी ने निवेदन किया कि यह सार्वभौमिक रूप से स्वीकार किया गया है कि आत्महत्या के प्रयत्न को दंडित करने का प्रावधान विकट और बर्बर है और इसलिए, इसे संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन माना जाना चाहिए। इसलिए, श्री सोराबजी का तर्क यह है कि भा.द.स. की धारा 306 को संवैधानिक माना जाना चाहिए, लेकिन धारा 309 को असंवैधानिक माना जाना चाहिए, जैसा कि पी. रथिनाम में माना गया इसे अनुच्छेद 21 का उल्लंघन नही माना जाना चाहिए, बल्कि यह संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन है। उन्होंने अनुच्छेद 14 के आधार पर दिए गए तर्क का समर्थन करने के लिए अनुच्छेद 21 की सहायता ली।

इस स्तर पर, उन निर्णयों का उल्लेख करना उचित होगा जिनमें भा.द.स. की धारा 309 की संवैधानिक वैधता के प्रश्न पर विचार किया गया था।

मारुति श्री पति दुबल, बनाम महाराष्ट्र राज्य, 1987 सीआरएल एल.जे. 743, बॉम्बे उच्च न्यायालय की एक खण्ड पीठ का निर्णय है। उस निर्णय में, न्यायमुर्ति पी.बी.सावंत, ने खण्ड पीठ के लिए अभिनिर्धारित किया कि भा.द.स. की धारा 309 संविधान के अनुच्छेद 14 के साथ–साथ अनुच्छेद 21 का भी उल्लंघन है। प्रावधान को प्रकृति में भेदभावपूर्ण और मनमाना माना गया जिससे अनुच्छेद 14 द्वारा संरक्षित समानता का उल्लंघन होता है। अनुच्छेद 21 में मरने का अधिकार, या किसी के स्वयं के जीवन को समाप्त करने का अधिकार शामिल किया माना था। इस कारण इसे अनुच्छेद 21 का भी उल्लंघन माना गया।

राज्य बनाम. संजय कुमार भाटिया, 1985 सीआरएल एल.जे. 931, दिल्ली उच्च न्यायालय का निर्णय है। न्यायमुर्ति सच्चर जैसा कि वह उस समय थे, ने खण्ड पीठ के लिए बोलते हुए कहा कि धारा 309 भा.द.स. की निरंतरता हमारे जैसे मानव समाज के लिए कालभ्रम अयोग्यता है। हालाँकि, संविधान के किसी भी प्रावधान के संदर्भ में इसकी संवैधानिक वैधता के प्रश्न पर विचार नहीं किया गया। अत: इस निर्णय पर आगे विचार करना आवश्यक नहीं है।

चेन्ना जगदीश्वर और अन्य बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, 1988 सीआरएल एल.जे. 549, आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ का निर्णय है। उसमें भा.द.स. की धारा 309 की संवैधानिक वैधता को चुनौती खारिज कर दी गई थी। यह तर्क खारिज कर दिया गया कि अनुच्छेद 21 में मरने का अधिकार भी शामिल है। खण्ड पीठ के लिए न्यायमुर्ति अमरेश्वरी, द्वारा यह भी बताया गया कि न्यायालयों के पास यह देखने की पर्याप्त शक्ति है कि जिन लोगों को देखभाल और ध्यान देने की आवश्यकता है, उनके साथ अनुचित कठोर व्यवहार या पूर्वाग्रह ना किया जा रहा हो। इसने अनुच्छेद 14 के उल्लंघन को अस्वीकार कर दिया।

इस न्यायालय का एकमात्र दो विद्वान न्यायाधीशों की खंडपीठ द्वारा दिया गया पी. रथिनाम निर्णय है। न्यायमुर्ति हंसारिया, ने खण्ड पीठ की ओर से, अनुच्छेद 14 के आधार पर धारा 309 की संवैधानिक वैधता को चुनौती को खारिज कर दिया, लेकिन संविधान के अनुच्छेद 21 के आधार पर चुनौती को बरकरार रखा । बंबई उच्च न्यायालय और आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के पहले के निर्णयों

पर विचार किया गया और अनुच्छेद 14 के संबंध में धारा 309 के संबंध में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय द्वारा लिए गए दृष्टिकोण से सहमति व्यक्त की गई। इसके बाद संविधान के अनुच्छेद 21 के संदर्भ में चुनौती पर निर्णय में आगे विचार किया गया। यह माना गया कि अनुच्छेद 21 में पर्याप्त सकारात्मक अंतर्वस्तु है इसलिए इसमें 'मरने का अधिकार' भी शामिल है जो अनिवार्य रूप से आत्महत्या करने के अधिकार की ओर ले जाता है। अनुच्छेद 21 की अंतर्वस्तु के संबंध में बॉम्बे उच्च न्यायालय के दृष्टिकोण से सहमति व्यक्त करते हुए यह अभिनिर्धारित किया गया:

'उपरोक्त सभी बातों को ध्यान में रखते हुए, हम कह सकते हैं कि जीने का अधिकार जिसके बारे में अनुच्छेद 21 में बात की गई है, उसमे मजबूर जीवन न जीने का अधिकार भी शामिल है।" (पृष्ठ 410)

चर्चा के निष्कर्ष को निम्नानुसार संक्षेपित किया गया था:

"ऊपर जो कहा गया है और उल्लेख किया गया है उसके आधार पर, हम कह सकते हैं कि दंड संहिता की धारा 309 हमारे दंड कानूनों को मानवीय बनाने के लिए अधिनियम से हटाए जाने योग्य है। यह एक क्रूर और अतार्किक प्रावधान है, और इसके परिणामस्वरूप उस व्यक्ति को जिसने पीड़ा झेली है और जो आत्महत्या करने में असफल होने के कारण बदनामी से गुजर रहा होगा उसे दोबारा (दोगुनी) सजा दी जा सकती है । तब आत्महत्या के कृत्य को धर्म, नैतिकता या सार्वजनिक नीति के विरुद्ध नहीं कहा जा सकता है, और आत्महत्या के प्रयत्न के कृत्य का समाज पर कोई हानिकारक प्रभाव नहीं पड़ता है। इसके अलावा, आत्महत्या या ऐसा करने का प्रयत्न करने से दूसरों को कोई क्षति नहीं होती है, जिसके कारण संबंधित व्यक्तियों की व्यक्तिगत स्वतंत्रता में राज्य के हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं होती है।

इसलिए, हम मानते हैं कि धारा 309 अनुच्छेद 21 का उल्लंघन करती है , और इसलिए, यह अमान्य है। यह कहा जा सकता है कि हमारे द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण न केवल मानवीकरण के उद्देश्य को आगे बढ़ाएगा, जो आज की आवश्यकता है, बल्कि वैश्वीकरण को भी आगे बढ़ाएगा, क्योंकि धारा 309 को हटाकर , हम अपने आपराधिक कानून के इस हिस्से को वैश्विक स्तर के अनुरूप बना देंगे ।" (पृष्ठ 429)

इस स्तर पर यह उल्लेख किया जा सकता है कि पी. रथिनाम और बॉम्बे उच्च न्यायालय के निर्णय में इच्छामृत्यु से संबंधित बहस, आत्मघाती प्रवृत्ति में योगदान देने वाले समाजशास्त्रीय और मनोवैज्ञानिक कारकों का और 'आत्महत्या के प्रयत्न ' को दंडित न करने की वांछनीयता पर वैश्विक बहस का संदर्भ दिया गया है। कई न्यायक्षेत्रों में आत्महत्या के प्रयत्न को दंडित करने के प्रावधानों की अनुपस्थिति भी देखी गई है। आत्महत्या के प्रयत्न को दंडात्मक अपराध न बनाने की वांछनीयता और विधि आयोग की भारतीय दंड संहिता से धारा 309 को हटाने की सिफारिश का भी उल्लेख किया गया है। हम केवल भारत के विधि आयोग की 42 वीं रिपोर्ट (1971) में निहित सिफारिश का उल्लेख कर सकते हैं, जिसमें इस तर्क का सार शामिल है और इसे सभी पहलू को ध्यान में रखते हुए बनाया गया था. प्रासंगिक उद्धरण इस प्रकार है:

"16.31 धारा 309 आत्महत्या करने के प्रयत्न को दंडित करती है। यह उल्लेख किया जा सकता है कि प्राचीन भारत में कुछ परिस्थितियों में आत्महत्या को स्वीकार्य माना जाता था। मनु की संहिता में "जंगल में साधु" अध्याय में (मनु के कानून, जॉर्ज बुहलर द्वारा अनुवादित, एफ.मैक्स मुलर द्वारा संपादित सेक्रेड बुक्स ऑफ द ईस्ट, (1967 पुनर्मुद्रण) खंड 25, पृष्ठ 204, जे श्लोक 31 और 32 देखें) जो कहता हैं :

"31. या जब तक उसका शरीर आराम की स्थिति में न आ जाए, तब तक उसे पूरी तरह से दृढ़ निश्चय करके उत्तर–पूर्व दिशा में, पानी और हवा पर निर्भर रहकर चलने दें।

32. एक ब्राह्मण, महान ऋषियों द्वारा प्रचलित उन तरीकों (अर्थात् डूबना, जल जाना या भूखा मरना), में से एक के द्वारा अपने शरीर से छुटकारा पा लेता है वह ब्राह्मण की दुनिया में दुःख और भय से मुक्त हो जाता है।

मनु के दो टीकाकार, गोवर्धन और कुल्लूका (मनु पर मेधातिथि की टिप्पणी देखें), कहते हैं कि एक व्यक्ति उस यात्रा पर महाप्रस्थान (महान प्रस्थान) कर सकता है जो मृत्यु में समाप्त होती है, जब वह असाध्य रूप से रोगग्रस्त होता है या किसी बड़े दुर्भाग्य का सामना करता है, और क्योंकि यह शास्त्रों में पढ़ाया जाता है, यह उन वैदिक नियमों का विरोध नहीं करता है, जो आत्महत्या को रोकते हैं (मनु के कानून, जॉर्ज बुहलर द्वारा अनुवादित, एफ.मैक्स मुलर द्वारा संपादित पूर्व की पवित्र पुस्तकें, (1967 पुनर्मुद्रण) खंड। 25, पृष्ठ 204, फुटनोट 31) देखें। इसमें मैक्स मुलर ने एक टिप्पणी को इस प्रकार जोड़ा है: – (देखें:)

"अपस तंभा II, 23, 2 के समानांतर मार्ग से, हालांकि, यह स्पष्ट है कि भूख से स्वैच्छिक मृत्यु को एक संन्यासी के जीवन के लिए उचित निष्कर्ष माना जाता था। इस प्रथा की प्राचीनता और सामान्य व्यापकता का अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि जैन तपस्वी भी इसे विशेष रूप से मेधावी मानते हैं।"

16.32 आत्महत्या के प्रयत्न के अपराध को देखते हुए, यह एक अंग्रेजी लेखक द्वारा अवलोकन को गया है: (एच.रोमिली फेडेन: आत्महत्या (लंदन, 1938), पृष्ठ 42 देखें)।

"यह उस व्यक्ति को और अधिक पीड़ा देने की एक विकृत प्रक्रिया प्रतीत होती है, जिसने पहले से ही जीवन को इतना असहनीय पाया है, उसकी खुशी की संभावना इतनी कम है, कि वह जीना बंद करने के लिए दर्द और मृत्यु का सामना करने को तैयार है। वह जिनके लिए जीवन सर्वथा कटु है, इसे और भी अधिक कटुता और पतन का विषय बनाना विकृत विधान प्रतीत होता है।"

इस विचार पर कार्य करते हुए कि ऐसे व्यक्ति समाज की सक्रिय सहानुभूति के पात्र हैं, न कि निंदा या दंड के, ब्रिटिश संसद ने 1961 में आत्महत्या अधिनियम बनाया, जिसके अंतर्गत आत्महत्या का प्रयत्न अपराध नहीं रहा।

16.33 हमने अपनी प्रश्नावली में यह प्रश्न शामिल किया कि क्या आत्महत्या का प्रयत्न दंडनीय होना चाहिए। विचार कमोबेश समान रूप से विभाजित था। हालाँकि, हमारा निश्चित रूप से मानना है कि दंडात्मक प्रावधान कठोर और अनुचित है और इसे निरस्त किया जाना चाहिए।" (जोर दिया गया)

धारा 309 को हटाकर भारतीय दंड संहिता में संशोधन करने के लिए 1972 में एक विधेयक पेश किया गया था। हालाँकि, विधेयक ख़त्म हो गया और विधि आयोग की उस सिफ़ारिश को लागू करने का अभी तक कोई प्रयत्न नहीं किया गया है।

संविधि में धारा 309 को बनाए रखने की वांछनीयता और भारत के संविधान में कुछ प्रावधान के संदर्भ में उस प्रावधान की संवैधानिक वैधता के संदर्भ में उसका परीक्षण किया जाना अलग मामला है और अप्रासंगिक जवाब है। इस उद्देश्य के लिए यह मानते हुए कि उन कारणों से भारतीय दंड संहिता से धारा 309 को हटाना वांछनीय हो सकता है जिसके कारण विधि आयोग की सिफारिश हुई और ऐसे प्रावधान की निरंतरता का विरोध करने वाले व्यक्तियों द्वारा उस विचार को अपनाया गया। यह नहीं कहा जा सकता है कि धारा 309 को असंवैधानिक घोषित करने का यह अपने आप में एक कारण है जब तक कि इसे संविधान के किसी विशिष्ट प्रावधान का उल्लंघन न माना जाए। इस कारण से, धारा 309 की संवैधानिक वैधता को चुनौती दी गई है और इसे केवल संविधान के अनुच्छेद 14 और 21 के संदर्भ में ही माना जाना आवश्यक है। इसलिए, अब हम संविधान के अनुच्छेद 14 और 21 के संदर्भ में संवैधानिक वैधता के प्रश्न पर विचार करने के लिए आगे बढ़ते हैं। आत्महत्या के प्रयत्न के लिए दंडात्मक प्रावधान बनाए रखने की वांछनीयता पर वैश्विक बहस का कोई भी संदर्भ इस निर्णय के उद्देश्य के लिए अनावश्यक है। उस पहलू पर अनुचित जोर और विशेष रूप से इच्छामृत्यु के मामलों का संदर्भ प्रावधान की संवैधानिकता के वास्तविक मुद्दे और मामले के मुख्य बिंदु को धुंधला कर देता है जो मुद्दे का निर्धारक है।

पी. रथिनाम में यह माना गया कि अनुच्छेद 21 के दायरे में 'मरने का अधिकार' भी शामिल है। पी. रथिनाम में माना गया कि अनुच्छेद 21 में सकारात्मक अंतर्वस्तु भी है और इसकी पहुंच केवल नकारात्मक नहीं है। अनुच्छेद 21 के व्यापक दायरे को इंगित करने के लिए कुछ निर्णयों पर भरोसा किया गया था, जिसमें 'जीवन' शब्द का अर्थ 'केवल पशु अस्तित्व' नहीं है, बल्कि जीवन की गुणवत्ता को शामिल करते हुए मानवीय गरिमा के साथ जीने का अधिकार है। वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में न बोलने की स्वतंत्रता, और संघ और आवागमन की स्वतंत्रता' मे किसी भी संघ में शामिल न होने या कहीं भी न जाने की स्वतंत्रता शामिल हैं, व्यापार की स्वतंत्रता में व्यापार न करने की स्वतंत्रता शामिल हैं, इस निर्वचन से यह सादृश्य निकालते हुए पी. रथिनाम में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि तार्किक रूप से इसका पालन करना चाहिए कि जीने के अधिकार में न जीने का अधिकार शामिल होगा, यानी, मरने का अधिकार या किसी के जीवन को समाप्त करने का अधिकार। यह निष्कर्ष निकालने के बाद कि अनुच्छेद 21 में मरने का अधिकार भी शामिल है, यह माना गया कि धारा 309 भा.द.स. अनुच्छेद 21 का उल्लंघन था। पी रथिनाम में यह मानने का कि भा.द.स. की धारा 309 असंवैधानिक है यही एकमात्र आधार है।

'मरने का अधिकार' – क्या यह अनुच्छेद 21 में शामिल है?

पहला प्रश्न यह है कि क्या अनुच्छेद 21 के दायरे में 'मरने का अधिकार' भी शामिल है? अनुच्छेद 21 इस प्रकार है:

अनुच्छेद 21

"21. प्राण और दैहिक स्वतंत्रता का संरक्षण किसी व्यक्ति को उसके प्राण या दैहिक स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया जाएगा, अन्यथा नहीं।"

इस पहलू पर पी. रथिनाम के निर्णय का एक महत्वपूर्ण हिस्सा इस प्रकार है:

"यदि किसी व्यक्ति को जीने का अधिकार है, तो प्रश्न यह है कि क्या उसके पास मरने का अधिकार है। बॉम्बे उच्च न्यायालय ने अपने निर्णय के पैराग्राफ 10 में कहा कि सभी मौलिक अधिकारों को एक साथ पढ़ा जाना चाहिए, जैसा कि आरसी कूपर बनाम भारत संघ में कहा गया है जो एक मौलिक अधिकार के बारे में सच है वह दूसरे मौलिक अधिकार के बारे में भी सच है। तब यह कहा गया था कि इस पर गंभीर विवाद नहीं है किया नहीं जा सकता है कि मौलिक अधिकारों के अपने सकारात्मक और साथ ही नकारात्मक पहलू भी हैं। उदाहरण के लिए, वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में न बोलने की स्वतंत्रता शामिल है। इसी तरह, संघ और आवागमन की स्वतंत्रता में किसी भी संघ में शामिल न होने या कहीं भी जाने की स्वतंत्रता शामिल नहीं है। इसी तरह, व्यवसाय की स्वतंत्रता में व्यवसाय न करने की स्वतंत्रता भी शामिल है। इसलिए, यह कहा गया था कि तार्किक रूप से इसका पालन करना चाहिए कि जीने के अधिकार में न जीने का अधिकार, यानी, * मरने या किसी के जीवन को समाप्त करने का अधिकार भी शामिल होगा।

उपरोक्त में से नामित दो बॉम्बे निर्णय के आलोचकों ने कहा है कि उपरोक्त सादृश्य "गलत" है, जो एक मौलिक अधिकार और दूसरे के बीच अंतर्निहित अंतर को नजरअंदाज करते हुए, स्वतंत्रता के बीच सतही तुलना के कारण उत्पन्न हो सकता है। यह तर्क दिया गया है कि जीने के अधिकार के नकारात्मक पहलू का मतलब सकारात्मक पहलू का अंत या ख़त्म होना होगा, और इसलिए, यह अधिकार का स्थगन नहीं होगा जैसा कि 'मौन' या 'गैर–संगठन'' और 'गैर आवागमन' के मामले में है । यह भी कहा गया है कि जीवन का अधिकार अन्य अधिकारों से अलग है क्योंकि अन्य सभी अधिकार जीने के अधिकार से व्युत्पन्न हैं।

उपरोक्त आलोचना केवल आंशिक रूप से सही है क्योंकि अनुच्छेद 19 के विभिन्न खंडों द्वारा प्रदत्त अधिकारों के सादृश्य पर नकारात्मक पहलू का अनुमान नहीं लगाया जा सकता है, कोई व्यक्ति जीने से इनकार कर सकता है, यदि उसका जीवन संबंधित व्यक्ति के अनुसार जीने लायक नहीं है या यदि जीवन की समृद्धि और परिपूर्णता आगे जीने की माँग नहीं करती है। कोई सही ही सोच सकता है कि उसने सभी सांसारिक सुख या खुशियाँ हासिल कर ली हैं; उसे इस जीवन से परे कुछ हासिल करना है। ईश्वर के साथ साम्य की यह इच्छा एक बहुत ही स्वस्थ दिमाग को भी यह सोचने के लिए प्रेरित

कर सकती है कि वह जीने के अपने अधिकार को त्याग देगा और मरने का विकल्प चुनेगा। किसी भी मामले में, किसी व्यक्ति को उसके अहित, नुकसान या नापसंदगी के बावजूद जीवन के अधिकार का आनंद लेने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता है।

xxx xxx xxx

उपरोक्त सभी बातों को ध्यान में रखते हुए, हम कहते हैं कि अनुच्छेद 21 जिस जीवन के अधिकार की बात करता है, उसके अंतर्गत मजबूर जीवन न जीने का अधिकार भी शामिल है।

इस संदर्भ में, हार्वर्ड विश्वविद्यालय में कानून और मनोचिकित्सा के प्रोफेसर के रूप में कार्य करते हुए एलन ए.स्टोन ने 1987 में कानून और मनोचिकित्सा में जोनास रॉबिट्सर मेमोरियल व्याख्यान में "मरने का अधिकार: नई समस्याएं" शीर्षक के अंतर्गत जो कहा था, उसका संदर्भ लिया जा सकता है। (यह लेक्चर एमोरी लॉ जर्नल, खंड 37, 1988 के पृष्ठ 627 से 643 पर छपा है)। प्रोफेसर स्टोन के निर्वचनन के मूल सिद्धांतों में से एक यह था कि मरने का अधिकार अनिवार्य रूप से आत्महत्या करने के अधिकार की ओर ले जाता है। ।"

(जोर दिया गया)
(पृष्ठ 409–410)

उपरोक्त उद्धरण से, यह स्पष्ट है कि मूल रूप से उस दृष्टिकोण का कारण यह है कि यदि किसी व्यक्ति को जीने का अधिकार है, तो उसे न जीने का भी अधिकार है। उस दृष्टिकोण को अपनाने के लिए जिन निर्णयों पर भरोसा किया गया, वे अन्य मौलिक अधिकारों से संबंधित हैं जो विभिन्न स्थितियों और विभिन्न प्रकार के अधिकारों से संबंधित हैं। उन मामलों में अधिकार एक सकारात्मक प्रकार का मौलिक अधिकार है, उदाहरण के लिए, बोलने की स्वतंत्रता, संघ की स्वतंत्रता, आवागमन की स्वतंत्रता, व्यापार की स्वतंत्रता आदि, जिसमें उस अधिकार का प्रयोग करने के लिए कोई सकारात्मक कार्य करने की बाध्यता न होने का नकारात्मक पहलू शामिल माना था। उन निर्णयों में केवल यह माना गया कि किसी कार्य को करने के अधिकार में उस तरीके से कार्य न करने का अधिकार भी शामिल है। उन निर्णयों से यह नहीं निकला कि यदि अधिकार किसी के भी द्वारा उलंघन से सुरक्षा के लिए है या दूसरे शब्दों में अधिकार में दूसरों द्वारा इसके निरंतर अभ्यास से वंचित न होने का नकारात्मक पहलू है, उदाहरण के लिए जीवन या व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार, तो इसके विपरीत सकारात्मक कार्य, ऐसे अधिकार के धारक को स्पष्ट रूप से इसे बंद करने या विलुप्त करने की अनुमति के लिए भी वही से प्रवाहित होता है। उन निर्णयों में अधिकार का नकारात्मक पहलू ही इस्तेमाल किया गया था, जिसके लिए निहितार्थ रुप से कोई सकारात्मक या प्रत्यक्ष कार्य करने की आवश्यकता नहीं थी। इस सिद्धांत को लागू करने के लिए तुलना करते समय अधिकारों की प्रकृति में इस अंतर को ध्यान में रखना होगा।

जब कोई व्यक्ति आत्महत्या करता है तो उसे कुछ सकारात्मक प्रत्यक्ष कार्य करने पड़ते हैं और उन कार्यों की उत्पत्ति का पता नहीं लगाया जा सकता है, या अनुच्छेद 21 के अंतर्गत 'जीवन के अधिकार' के संरक्षण में शामिल नहीं किया जा सकता है। 'जीवन की पवित्रता' का महत्वपूर्ण पहलू को

भी नज़रअंदाज़ नहीं किया जाना चाहिए। अनुच्छेद 21 जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता की सुरक्षा को संरक्षण देने वाला प्रावधान है और किसी भी तरह से जीवन के विलुप्त होने को जीवन की सुरक्षा में शामिल नहीं माना जा सकता है। किसी व्यक्ति को आत्महत्या करके अपने जीवन को खत्म करने की अनुमति देने का दर्शन चाहे जो भी हो, हमें अनुच्छेद 21 में मरने के अधिकार को मौलिक अधिकार के एक भाग के रूप में शामिल करने का निर्वचन कठिन लगता है। 'जीवन का अधिकार' अनुच्छेद 21 में सन्निहित एक नैसर्गिक अधिकार है, लेकिन आत्महत्या जीवन की अप्राकृतिक समाप्ति है और इसलिए, जीवन के अधिकार की अवधारणा के साथ असंगत और परस्पर विरोधी है।' सम्मान और पूरी विनम्रता के साथ, यह मानने के लिए एक तुलनीय आधार प्रदान करने के लिए कि 'जीवन के अधिकार' में मरने का अधिकार' भी शामिल है हम अन्य अधिकारों की प्रकृति में कोई समानता नहीं पाते हैं, जैसे कि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार' आदि। ससम्मान, अनुच्छेद 21 के संदर्भ में बताए गए कारण से यह तुलना अनुपयुक्त है। अन्य मौलिक अधिकारों से संबंधित निर्णय, जिसमें किसी अधिकार का प्रयोग करने की बाध्यता के अभाव को उस अधिकार के प्रयोग में शामिल माना गया था, अनुच्छेद 21 के संबंध में पी. रथिनाम में लिए गए दृष्टिकोण का समर्थन करने के लिए उपयुक्त नहीं हैं।

अनुच्छेद 21 में 'जीवन' शब्द के अर्थ और अंतर्वस्तु में इसे मानवीय गरिमा के साथ जीवन माना गया है। जीवन का कोई भी पहलू जो इसे गरिमामय बनाता है, उसे इसमें पढ़ा जा सकता है, लेकिन वह नहीं जो इसे ख़त्म कर देता है और इसलिए, यह जीवन के निरंतर अस्तित्व के साथ असंगत होने के कारण, यह अधिकार ही ख़त्म हो जाता है। 'मरने का अधिकार', यदि कोई है, स्वाभाविक रूप से जीवन के अधिकार के साथ असंगत है 'जैसा कि मृत्यु' जीवन के साथ है।

इच्छामृत्यु का विरोध इस विचार पर कि लगातार विकृतशील अवस्था (पीवीएस) में रहना लाइलाज बीमारी के रोगी के लिए लाभदायक नहीं है, 'जीवन की पवित्रता' या गरिमा के साथ जीने के अधिकार के सिद्धांत से असंबंधित होने के कारण, यह निर्धारित करने के लिए कि जीवन के अधिकार में मरने का अधिकार भी शामिल है, इससे अनुच्छेद 21 का विषय क्षेत्र निर्धारित करने में कोई सहायता नहीं मिलती है। 'जीवन का अधिकार' का अर्थ जिसमें मानवीय गरिमा के साथ जीने का अधिकार भी शामिल है, नैसर्गिक जीवन के अंत तक ऐसे अधिकार का अस्तित्व होगा। इसमें मृत्यु की गरिमापूर्ण प्रक्रिया सहित मृत्युपर्यन्त गरिमापूर्ण जीवन का अधिकार भी शामिल है। दूसरे शब्दों में, इसमें एक मरते हुए व्यक्ति को भी गरिमा के साथ मरने का अधिकार शामिल हो सकता है जब उसका जीवन समाप्त हो रहा हो। लेकिन जीवन के अंत में गरिमा के साथ 'मरने के अधिकार' को, जीवन की नैसर्गिक अवधि को कम करने वाली एक अप्राकृतिक मृत्यु से 'मरने के अधिकार' के साथ भ्रमित नहीं किया जाना चाहिए और न ही बराबर माना जाना चाहिए।

एक मरते हुए आदमी के संदर्भ में, जो असाध्य रूप से बीमार है या लगातार विकृतशील अवस्था में है, एक प्रश्न उठ सकता है कि उसे उन परिस्थितियों में अपने जीवन को समय से पहले समाप्त करने की अनुमति दी जा सकती है। इस श्रेणी के मामले गरिमा के साथ जीने के अधिकार के एक भाग के रूप में 'सम्मान के साथ मरने के अधिकार' के दायरे में तब आ सकते हैं, जब नैसर्गिक जीवन की समाप्ति के कारण मृत्यु निश्चित और आसन्न हो और नैसर्गिक मृत्यु की प्रक्रिया शुरू हो गई हो। ये जीवन को

ख़त्म करने के मामले नहीं हैं, बल्कि नैसर्गिक मृत्यु की प्रक्रिया को तेज़ करने के मामले हैं जो पहले ही शुरू हो चुकी है। ऐसे मामलों में भी चिकित्सक की सहायता से जीवन समाप्त करने की अनुमति देने पर बहस अनिर्णायक है। यह दोहराना पर्याप्त है कि ऐसे मामलों में प्राकृतिक मृत्यु की प्रक्रिया के दौरान पीड़ा की अवधि को कुछ कम करने के लिए जीवन की समाप्ति की अनुमति देने का दृष्टिकोण, अनुच्छेद 21 के निर्वचन में प्राकृतिक जीवन की अवधि को कम करने का समर्थन करने वाला तर्क इसमें शामिल नहीं है।

इसलिए, हम पी. रथिनाम में किये गये अनुच्छेद 21 के निर्वचन से सहमत होने में असमर्थ हैं । एकमात्र कारण जिसके लिए धारा 309 को पी. रथिनाम में अनुच्छेद 21 का उल्लंघन माना जा सकता है, वो है कि यह विधिक संवीक्षा का सामना नहीं करता है। हम यह मानने में असमर्थ हैं कि भा.द.स. की धारा 309 अनुच्छेद 21 का उल्लंघन है।

अब विचार के लिए एकमात्र अवशिष्ट प्रश्न यह है कि क्या पी.रथिनाम में दिए गए निष्कर्ष का समर्थन करने के लिए भा.द.स. की धारा 309 को अनुच्छेद 14 का उल्लंघन माना जा सकता है ।

ऊपर चर्चा की गई पी. रथिनाम में निर्णय का आधार, श्री बीएस मलिक को छोड़कर किसी भी विद्वान अधिवक्ता द्वारा समर्थित नहीं था। पी. रथिनाम में निर्णय के आधार पर यह आग्रह किया गया कि धारा 306 भी अनुच्छेद 21 का उल्लंघन है , जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है। हमने यह विचार किया है कि अनुच्छेद 21 में मरने का अधिकार शामिल नहीं है' जैसा कि पी. रथिनाम में कहा गया है, भा.द.स. की धारा 306 की संवैधानिक वैधता को चुनौती देने वाला पहला तर्क, भी उस आधार पर विफल रहता है, और खारिज कर दिया गया।

अनुच्छेद 14 – क्या यह भा.द.स. की धारा 309 का उल्लंघन है ?

अब हम संविधान के अनुच्छेद 14 के संदर्भ में धारा 309 की संवैधानिक वैधता पर विचार करेंगे । संक्षेप में, इस बिंदु पर श्री उजागर सिंह, श्री बीएस मलिक और श्री सोली जे सोराबजी का तर्क यह है कि यह एक विकट और बर्बर प्रावधान है जो भेदभावपूर्ण और मनमाना होने के कारण समानता खंड का उल्लंघन करता है। यह तर्क दिया गया कि आत्महत्या का प्रयत्न किसी भी अन्य सभ्य समाज में दंडनीय नहीं है और ऐसे दंडात्मक प्रावधान को बनाए रखने के विरुद्ध एक मजबूत मत है, जिसके कारण भारत के विधि आयोग ने भी इसे हटाने की सिफारिश की है। श्री सोराबजी ने तर्क दिया कि अनुच्छेद 14 का व्यापक विषय क्षेत्र , अनुच्छेद 21 में शामिल सम्मान के साथ जीने के अधिकार के साथ, धारा 309 को असंवैधानिक बनाता है। इस प्रकार, गरिमा के साथ जीवन तक सीमित अनुच्छेद 21 (इसमें मरने का अधिकार शामिल नहीं है) का आह्वान करते हुए श्री सोराबजी ने भा.द.स. की धारा 309 की वैधता को चुनौती देने के लिए अनुच्छेद 14 के साथ–साथ अनुच्छेद 21 का भी उल्लेख किया हैं । पी. रथिनाम में दिए गए निष्कर्ष का इस आधार पर समर्थन किया जाता है।

हमारा यह मत है कि संविधान के अनुच्छेद 14 के आधार पर चुनौती में कोई बल नहीं है . पी. रथिनाम में भी अनुच्छेद 14 पर आधारित तर्क को खारिज कर दिया गया था। इसमें यह कहा गया था:

"बॉम्बे उच्च न्यायालय ने मुख्य रूप से दो कारणों से धारा 309 को अनुच्छेद 14 का उल्लंघन माना । पहला, कौन सा कार्य या कृत्यों की श्रृंखला आत्महत्या का प्रयत्न माना जाएगा, कहां तक इसकी सीमा बनाई जाय यह पता नहीं है – कुछ प्रयत्न गंभीर जबकि अन्य गैर–गंभीर हो सकते हैं। यह कहा गया था कि वास्तव में दार्शनिक, नैतिकतावादी और समाजशास्त्री इस बात पर सहमत नहीं थे कि आत्महत्या क्या है। विद्वान न्यायाधीशों के अनुसार प्रशंसनीय परिभाषा या दिशानिर्देशों की कमी ने धारा 309 को मनमाना बना दिया है । एक अन्य कारण यह दिया गया कि धारा 309 उन परिस्थितियों का उल्लेख किए बिना आत्महत्या करने के सभी प्रयासों को समान मानती है बिना उन परीस्तिथियो का उल्लेख किए जिसमे इसके लिए प्रयत्न किए गए हैं।

उपरोक्त कारणों में से पहला कारण हमारे अनुसार सही नहीं है, क्योंकि आत्महत्या के संबंध में चाहे जो भी मतभेद हों, इसमें कोई संदेह नहीं है कि आत्महत्या जानबूझकर स्वयं की जान लेना है, जैसा कि एनसाइक्लोपीडिया ऑफ क्राइम एंड जस्टिस, संस्करण . IV, 1983 संस्करण के पृष्ठ 1521 में कहा गया है। बेशक, आत्महत्या शोधकर्ताओं के बीच अभी भी इस बात पर मतभेद है कि आत्मघाती व्यवहार क्या है, उदाहरण के लिए, क्या मादक पदार्थों की लत, पुरानी शराब, भारी सिगरेट धूम्रपान, लापरवाह ड्राइविंग, अन्य जोखिम लेने वाले व्यवहार आत्मघाती हैं या नहीं। यह भी हो सकता है कि आत्महत्या करने के लिए अलग–अलग तरीके अपनाए जाएं, उदाहरण के लिए, आग्नेयास्त्र का उपयोग, विशेष रूप से नशीली दवाओं द्वारा जहर, ओवरडोज़, फांसी, गैस द्वारा स्वास। फिर भी, आत्महत्या की व्यापक परिभाषा दी जा सकती है, जैसा कि उपरोक्त वेबस्टर डिक्शनरी में दिया गया है। इसके अलावा, अभियोजन शुरू होने पर आरोपी के लिए यह दलील देने का विकल्प हमेशा होता है कि उसका कृत्य आत्महत्या नहीं है, जिसके बाद न्यायालय इस पहलू पर भी निर्णय करेगी।

जहां तक आत्महत्या के विभिन्न प्रयासों को एक समान ही मानने का प्रश्न है, इसे भी अनुच्छेद 14 का उल्लंघन नहीं माना जा सकता है, क्योंकि प्रयत्न की प्रकृति, गंभीरता और सीमा के अनुरूप सजा दी जा सकती है। गौरतलब है कि धारा 309 में केवल अधिकतम एक साल तक की सजा का प्रावधान है। इसमें सजा के तौर पर केवल जुर्माना लगाने का प्रावधान है। यह वह पहलू है, जिसके बारे में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय की खण्ड पीठ ने अपने पूर्वोक्त निर्णय में बॉम्बे के दृष्टिकोण से असहमति व्यक्त करते हुए कहा कि कुछ मामलों में अपराधियों की परिवीक्षा अधिनियम को भी लागू किया जा सकता है, जिसकी धारा 12 न्यायालय को यह सुनिश्चित करने में सक्षम बनाती है ऐसे व्यक्ति पर कोई कलंक या अयोग्यता नहीं जुड़ी है।

हम अनुच्छेद 14 के संबंध में धारा 309 के संबंध में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण से सहमत हैं ।

(पृष्ठ 405)
(जोर दिया गया)

ससम्मान, हम पी रथिनाम में अनुच्छेद 14 के संबंध में अपनाए गए दृष्टिकोण से सहमत हैं।

हम पहले ही कह चुके हैं कि आत्महत्या के प्रयत्न को दंडित करने के ऐसे दंडात्मक प्रावधान को बनाए रखने की वांछनीयता पर बहस, जिसमें विधि आयोग द्वारा इसे हटाने की सिफारिश भी शामिल है, यह इंगित करने के लिए पर्याप्त नहीं है कि प्रावधान अनुच्छेद 14 का उल्लंघन होने के कारण असंवैधानिक है । भले ही उन तथ्यों को ध्यान में रखा जाए, प्रावधान की गंभीरता को सजा के मामले में व्यापक विवेकाधिकार से कम किया जाता है क्योंकि न्यूनतम सजा देने की कोई आवश्यकता नहीं है और कारावास की सजा अनिवार्य भी नहीं है। सजा के रूप में कोई न्यूनतम जुर्माना भी निर्धारित नहीं है, जिसे भा.द.स. की धारा 309 के अंतर्गत दोषसिद्धि पर दिया जा सकती हो । पी. रथिनाम में इस पहलू पर ध्यान दिया गया है यह मानने के लिए कि अनुच्छेद 14 का उल्लंघन नहीं करता है।

प्रतिवेदित निर्णयों से पता चलता है कि भा.द.स. की धारा 309 के अंतर्गत दोषी ठहराए जाने पर भी, वास्तव में आरोपी को अपराधी परिवीक्षा अधिनियम 1958, या दण्ड प्रक्रिया संहिता 1908, की धारा 562, इसके अनुरूप दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973, की धारा 360 के अंतर्गत लाभ देकर अनुकंपा के साथ व्यवहार किया गया है। माउंट बरकत बनाम सम्राट, एआईआर 1934 लाहौर 514; सम्राट बनाम. द्वारका पूजा, 14 बाम्बे एलआर 146; सम्राट बनाम. माउंट धिराजिया, एआईआर 1940 ऑल 486; राम सुंदर बनाम. उत्तर प्रदेश राज्य, एआईआर 1962 इलाहबाद। 262; वैलेंटिनो बनाम. राज्य, एआईआर 1967 गोवा 138; फुलभाई बनाम. महाराष्ट्र राज्य, 1976 सीआरएल.एलजे 1519; राधारानी बनाम मध्य प्रदेश राज्य, एआईआर 1981 एससी 1776; रुखमीना देवी बनाम. उत्तर प्रदेश राज्य, 1988 सीआरएल.एलजे 548। अनुच्छेद 14 के लिए पी. रथिनाम में उपरोक्त उद्धृत चर्चा अनुच्छेद 14 पर आधारित चुनौती को अस्वीकार करने के लिए पर्याप्त है।

हम अनुच्छेद 14 पर आधारित चुनौती के आश्रय के लिए श्री सोराबजी द्वारा मांगी गई अनुच्छेद 21 की सहायता का संक्षेप में उल्लेख कर सकते हैं। हमने पहले माना है कि मरने का अधिकार अनुच्छेद 21 के अंतर्गत 'जीवन के अधिकार' में शामिल नहीं है । इसी कारण से 'मानवीय गरिमा के साथ जीने के अधिकार' का अर्थ यह नहीं लगाया जा सकता है कि इसके दायरे में निश्चित मृत्यु की नैसर्गिक प्रक्रिया शुरू होने से पहले नैसर्गिक जीवन को समाप्त करने का अधिकार शामिल है । हम यह नहीं देखते हैं कि अनुच्छेद 14 के आधार पर चुनौती का समर्थन करने के लिए अनुच्छेद 21 को कैसे लागू किया जा सकता है। इसलिए, यह स्वीकार नहीं किया जा सकता है कि धारा 309 संविधान के अनुच्छेद 14 या अनुच्छेद 21 का उल्लंघन है।

इसका तात्पर्य यह है कि यह मानने का कोई आधार नहीं है कि भा.द.स. की धारा 309 संवैधानिक रूप से अमान्य है। 'मरने के अधिकार' को शामिल करने के लिए अनुच्छेद 21 के निर्माण के आधार पर पी. रथिनाम में लिए गए विपरीत दृष्टिकोण को हमारे द्वारा सही नहीं माना जा सकता है। अनुच्छेद 14 के आधार पर भी उस निर्णय का समर्थन नहीं किया जा सकता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि भा.द.स. की धारा 309 को किसी भी कारण से असंवैधानिक नहीं माना जाएगा।

भा.द.स. की धारा 306 की वैधता

अब प्रश्न यह है कि क्या भा.द.स. की धारा 306 किसी अन्य कारण से असंवैधानिक है। हमारी राय में, भा.द.स. की धारा 309 की संवैधानिक वैधता को चुनौती खारिज कर दी गई है , धारा 306 की संवैधानिक वैधता के लिए कोई गंभीर चुनौती नहीं बची है। हमने पहले ही पी. रथिनाम पर आधारित मुख्य चुनौती को इस आधार पर खारिज कर दिया है कि 'मरने का अधिकार' अनुच्छेद 21 में शामिल है।

यह महत्वपूर्ण है कि धारा 306 एक स्वतंत्र अपराध है जो भा.द.स. की धारा 309 से स्वतंत्र अस्तित्व में है । धारा 306 और 309 इस प्रकार हैं:

धारा 306 :

"306. आत्महत्या के लिए दुष्प्रेरण – यदि कोई व्यक्ति आत्महत्या करे, तो जो कोई ऐसी आत्महत्या का दुष्प्रेरण करेगा, वह दोनो में से किसी भाति के कारावास से जिसकी अवधि दस वर्ष तक की हो सकेगी, दण्डित किया जाएगा और जुर्माने से भी दण्डनीय होगा।

धारा 309 :

"309. आत्महत्या करने का प्रयत्न– जो कोई आत्महत्या करने का प्रयत्न करेगा, और उस अपराध के करने के लिए कोई कार्य करेगा, उसे साधारण कारावास से, जिसकी अवधि एक वर्ष तक की हो सकेगी, या जुर्माने से या दोनों से, दण्डित किया जाएगा ।

धारा 306 आत्महत्या के लिए दुष्प्रेरण के लिए सज़ा निर्धारित करती है जबकि धारा 309 आत्महत्या के प्रयत्न के लिए सज़ा निर्धारित करती है। आत्महत्या के प्रयत्न के लिए दुष्प्रेरक धारा 306 के दायरे से बाहर है और यह केवल भा.द.स. की धारा 107 के साथ पढ़ी जाने वाली धारा 309 के अंतर्गत दंडनीय है । कुछ अन्य न्यायक्षेत्रों में, भले ही आत्महत्या का प्रयत्न दंडनीय अपराध नहीं है, फिर भी इसके दुष्प्रेरण को दंडनीय बनाया गया है। वहां के प्रावधान में आत्महत्या के लिए दुष्प्रेरण के साथ–साथ आत्महत्या के प्रयत्न के लिए भी सजा का प्रावधान है। इस प्रकार, यहां तक कि जहां आत्महत्या के प्रयत्न के लिए सजा को वांछनीय नहीं माना जाता है, वहां इसके लिए दुष्प्रेरण को दंडनीय अपराध बनाया गया है। दूसरे शब्दों में सहायता प्राप्त आत्महत्या और सहायता प्राप्त आत्महत्या के प्रयत्न को समाज के हित में ठोस कारणों से दंडनीय बनाया गया है। ऐसे दंड प्रावधान की अनुपस्थिति में निहित खतरे को रोकने के लिए भी ऐसा प्रावधान वांछनीय माना जाता है। आत्महत्या का प्रयत्न करने वाले व्यक्ति को दंडित न करने के दलील का समर्थन करने के लिए जो तर्क दिए गए हैं, वे आत्महत्या करने या उसके प्रयत्न में सहायता करने वाले किसी अन्य व्यक्ति के लाभ के लिए नहीं हैं। इस दलील को विद्वान महान्यायवादी के साथ–साथ न्याय मित्र श्री नरीमन और श्री सोराबजी ने दृढ़ता से प्रस्तुत किया है और हम इस निवेदन में बल पाते हैं।

दुष्प्रेरक को अलग तरह से देखा जाता है, क्योंकि वह दूसरे व्यक्तियों के जीवन को खत्म करने के लिए दुष्प्रेरण करता है और ऐसे दंडात्मक प्रावधान की अनुपस्थिति के दुरुपयोग को रोकने के लिए दुष्प्रेरण की सजा को आवश्यक माना जाता है। अंग्रेजी कानून में आत्महत्या अधिनियम, 1961 में निम्नानुसार प्रासंगिक प्रावधान इस प्रकार हैं:

"1. आत्महत्या को अपराध नहीं माना जाएगा।

कानून का वह नियम जिसके अंतर्गत किसी व्यक्ति के लिए आत्महत्या करना अपराध है, को निरस्त कर दिया गया है।

टिप्पणी

आत्महत्या. "फेलो डे से या आत्महत्या वह है, जहां विवेक की उम्र का एक व्यक्ति, और कंपोजिट मेंटिस, स्वेच्छा से खुद को चाकू मारकर, जहर देकर या किसी अन्य तरीके से मार देता है" और यह कॉमन लॉ में एक घोर अपराध था: 1 हेल पीसी 411–419 देखें, यह धारा कानून के उस नियम को निरस्त करती है लेकिन, धारा 2(1) के आधार पर, एक व्यक्ति जो किसी अन्य की प्रयासित आत्महत्या या आत्महत्या करने में सहायता करता है, दुष्प्रेरण करता है या उकसाता है, वह वैधानिक अपराध का दोषी है।

यह आवश्यकता कि आत्महत्या को मृत्यु के कारण के रूप में स्थापित करने के लिए आत्मघाती आशय का संतोषजनक सबूत हमेशा आवश्यक है, इस अधिनियम के पारित होने से परिवर्तित नहीं होता है: आर बनाम कार्डिफ़ कोरोनर, एक्स पी थॉमस [1970] 3 ऑल ईआर 469, [1970] 1 डब्लूएलआर 1475.देखें

2. किसी अन्य की आत्महत्या में संलिप्तता के लिए आपराधिक दायित्व

(1) जो व्यक्ति किसी अन्य की आत्महत्या में या आत्महत्या करने के प्रयत्न में सहायता करता है, दुष्प्रेरण करता है, सलाह देता है या उसके लिए उकसाता है, तो दोषी पाए जाने पर अधिकतम चौदह वर्ष की अवधि के लिए कारावास की सजा दी जाएगी।

यह अंतर अच्छी तरह से पहचाना गया है और अन्य देशों के कुछ निर्णयों में इसे सामने लाये जाने पर बल दिया गया है। रोड्रिग्ज बनाम बी.सी. (ए.–जी.) 107 डी.एल.आर. (चौथी श्रृंखला) 342, में कनाडा का सर्वोच्च न्यायालय निम्नानुसार बताता है:

"जैसा कि हम देखेंगे, जीवन की पवित्रता को ऐतिहासिक रूप से मृत्यु के स्वयं–प्रत्यारोप में इच्छा की स्वतंत्रता के बिना और निश्चित रूप से उस विकल्प को पूरा करने में दूसरों की भागीदारी के रूप में समझा गया है। कम से कम, अपने जीवन को समाप्त करने वाले व्यक्तियों पर शक्ति का प्रयोग करने

वाले दूसरों की भागीदारी को विनियमित करने के राज्य के अधिकार का विरोध करने के लिए समाज में कोई नई सर्वसम्मति नहीं है।

(पृष्ठ 389 पर)

एरेडेल एन एच ए ट्रस्ट बनाम ब्लैंड, 1993 (2) डब्लूएलआर 316 (एचएल), एक चिकित्सक द्वारा जीवन की निरंतरता के लिए कृत्रिम उपायों को वापस लेने से संबंधित मामला था। यद्यपि चिकित्सक की सहायता से आत्महत्या या इच्छामृत्यु के मामलों से निपटना आवश्यक नहीं है, फिर भी बार में उद्धृत इस निर्णय का एक संक्षिप्त संदर्भ दिया जा सकता है। लगातार विकृतशील अवस्था में रहने से रोगी को कोई लाभ नहीं होने के संदर्भ में, जीवन की पवित्रता का सिद्धांत, जो कि राज्य की चिंता का विषय है, को पूर्ण नहीं बताया गया था। ऐसे मामलों में भी, उन मामलों के बीच मौजूदा महत्वपूर्ण अंतर है जिनमें चिकित्सक अपने मरीज को उपचार या देखभाल प्रदान नहीं करने या प्रदान करना जारी रखने का निर्णय लेता है जो उसे लम्बा जीवन प्रदान कर सकता है, और जिनमें उदाहरण के लिए वह निर्णय लेता है, एक घातक दवा का प्रबंध करके, सक्रिय रूप से अपने मरीज के जीवन को समाप्त करने के लिए, इसको निम्नानुसार वर्णित किया गया था:

"..... लेकिन यह एक डॉक्टर के लिए अपने मरीज़ को उसकी मृत्यु के लिए दवा देना वैध नहीं है, भले ही वह तरीका उसकी पीड़ा को समाप्त करने की मानवीय इच्छा से प्रेरित हो, चाहे वह पीड़ा कितनी भी बड़ी क्यों न हो: रेग बनाम कॉक्स (अप्रतिवेदित), 18 सितंबर, 1992 देखें। इसलिए कार्य करने का मतलब उस रुबिकॉन को पार करना है जो सक्रिय रूप से उसकी मृत्यु से बचने या उसकी पीड़ा को समाप्त करने के लिए एक ओर जीवित रोगी की देखभाल और दूसरी ओर इच्छामृत्यु के बीच चलता है । सामान्य कानून में इच्छामृत्यु वैध नहीं है। बेशक यह सर्वविदित है कि हमारे समाज के कई जिम्मेदार सदस्य हैं जो मानते हैं कि इच्छामृत्यु को वैध बनाया जाना चाहिए, लेकिन मेरा मानना है कि यह परिणाम केवल विधि द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है जो लोकतांत्रिक इच्छा को व्यक्त करता है, जिससे हमारे कानून में मौलिक बदलाव किया जाना चाहिए और, यदि यह अधिनियमित होता है, तो यह सुनिश्चित कर सकता है कि ऐसी वैध हत्या केवल उचित पर्यवेक्षण और नियंत्रण के अधीन की जा सकती है। ....."

(बल दिया गया)
(पृष्ठ 368 पर)

किसी भी संभावित दुरुपयोग को रोकने के लिए पर्याप्त सुरक्षा उपाय प्रदान करके एक उपयुक्त कानून बनाकर इस तरह के बदलाव लाने की वांछनीयता को विधायिका का कार्य माना जाता था।

कम्पैशन इन डाइंग बनाम स्टेट ऑफ़ वॉशिंगटन 49 एफ.3 डी 586 में यूनाइटेड स्टेट्स अपीलीय न्यायालय के नौवें सर्किट के निर्णय, जिसने 850 संघीय अनुपूरक 1454 में रिपोर्ट की गई डब्ल्यू डी वाशिंगटन यूनाइटेड स्टेट्स जिला न्यायालय के निर्णय को उलट दिया उसकी प्रासंगिकता है। राज्य क़ानून की संवैधानिक वैधता जिसने मानसिक रूप से सक्षम परंतु असाध्य रूप से बीमार वयस्क द्वारा आत्महत्या करने के लिए सहायता करने वाले चिकित्सक पर प्रतिबंध लगाया है वो प्रश्न में थे। जिला

न्यायालय ने आत्महत्या के प्रयत्न को बढ़ावा देने के लिए दंड देने वाले प्रावधान को असंवैधानिक ठहराया। अपील में उस निर्णय को उलट दिया गया और प्रावधान की संवैधानिक वैधता को बरकरार रखा गया।

चिकित्सक द्वारा सहायता प्राप्त आत्महत्या के मामलों में यह सावधानी इंगित करना आवश्यक है कि उस श्रेणी के बाहर सहायता प्राप्त आत्महत्याओं को जीवन की पवित्रता के मूल सिद्धान्त के बाहर होने का दावा करने का कोई तर्कसंगत आधार नहीं है। आत्महत्या के प्रयत्न को दंडित करने वाले प्रावधान को चुनौती देने के लिए दिए गए कारण आत्महत्या के लिए दुष्प्रेरक या आत्महत्या का प्रयत्न करने वाले को उपलब्ध नहीं हैं। आत्महत्या के लिए दुष्प्रेरण या आत्महत्या का प्रयत्न करना एक अलग अपराध है जो उन देशों के कानून में भी लागू पाया जाता है जहां आत्महत्या का प्रयत्न दंडनीय नहीं है। भा.द.स. की धारा 306 एक अलग अपराध अधिनियमित करती है जो भा.द.स. की धारा 309 से स्वतंत्र अस्तित्व में है । विद्वान महान्यायवादी और दोनों विद्वान न्याय मित्र ने भा.द.स. की धारा 306 की संवैधानिक वैधता का सही समर्थन किया।

नरेश मारोतराव साखरे और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य, 1995 सीआरएल एल.जे 96, में बॉम्बे उच्च न्यायालय ने भा.द.स. की धारा 306 की वैधता के प्रश्न पर विचार किया और उसे बरकरार रखा। हमारे सामने भा.द.स. की धारा 306 को असंवैधानिक ठहराने वाले किसी भी निर्णय का हवाला नहीं दिया गया है। हमें भा.द.स. की धारा 309 या धारा 306 को असंवैधानिक मानने का कोई कारण नहीं मिलता है।

जो कारण हमने बताए हैं, उन कारणों से मारुति श्रीपति दुबल बनाम महाराष्ट्र राज्य , 1987 सीआरएल एल.जे 743 में बॉम्बे उच्च न्यायालय के और पी. रथिनाम बनाम भारत संघ और अन्य, 1994 (3) एससीसी 394 में इस न्यायालय की एक खण्ड पीठ का निर्णय जिसमें धारा 309 भा.द.स. को असंवैधानिक अभिनिर्धारित किया गया है सही नहीं है। चेन्ना जगदीश्वर और अन्य बनाम आंध्र प्रदेश राज्य , 1988 सीआरएल एल.जे 549 में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय का निष्कर्ष , कि धारा 309 भा.द.स. संविधान के अनुच्छेद 14 या अनुच्छेद 21 का उल्लंघन नहीं करती है, यहां दिए गए कारणों से अनुमोदित है। भा.द.स. की धारा 306 और 309 की संवैधानिक वैधता के प्रश्नों का तदनुसार निर्णय किया जाता है, यह मानते हुए कि दोनों में से कोई भी प्रावधान संवैधानिक रूप से अमान्य नहीं है।

ये अपीले अब भा.द.स. की धारा 306 और 309 को संवैधानिक रूप से वैध मानते हुए कानून के अनुसार गुण–दोष के आधार पर निर्णय के लिए उपयुक्त खण्ड पीठ के समक्ष सूचीबद्ध की जाएगी।

अपीलो का निस्तारण किया गया